

वाजपेयी सरकार का शिक्षा पर नया हमला : उच्च शिक्षा के खर्च में भारी कटौती

अधिनव सिन्हा

बाजार की पुजारी भाजपा सरकार ने बाजार के लिए अपनी वफादारी का ताजातरीन नजराना प्रस्तुत किया और विश्व बैंक के सभी शिक्षा सम्बन्धी फरमानों को टो कदम आगे बढ़कर लागू करते हुए विश्वविद्यालय के शुल्कों में भारी बढ़ोत्तरी कर दी है। इसके पहले मानव संसाधन विकास मंत्री मुरली मनोहर जोशी ने कुछ अद्भुत तर्क दिये, मसलन, उन्होंने कहा कि जब वे स्वयं छात्र थे तब से फीसें बढ़ी ही नहीं हैं, लिहाजा अब फीसें बढ़ना स्वाभाविक है। इसके अलावा और भी हास्यास्पद तर्क दिये गये हैं बढ़ोत्तरी के पक्ष में, जिन पर हम बाद में आयेंगे।

मानव संसाधन विकास मंत्री के उपरोक्त तर्क के विपरीत सच्चाई यह है कि नई आर्थिक नीतियां लागू होने के बाद से फीसों में औसतन 7 से 10 गुना तक

की बढ़ोत्तरी हो चुकी है। कुछ क्षेत्रों में तो इससे भी ज्यादा विडम्बना तो यह है कि इसके पीछे दी जाने वाली सरकारी दलीलों के झाँसे में कई तथाकथित प्रगतिशील बुद्धिजीवी भी आ जा रहे हैं। शिक्षा के क्षेत्र में दुर्व्वर्वस्था को अन्य क्षेत्रों की तरह ही बाजार-पुजारी भाजपा सरकार निजीकरण की दलीलें गढ़ने के लिए इस्तेमाल कर रही है। यह पूरी प्रक्रिया शुरू तो 1991 से ही हो गयी थी, लेकिन इसको अब असली रफ्तार मिली है, जब स्वदेशी का ढोल बजाने वाले सत्ता में काबिज हैं। अब देश भर में फैले 243 विश्वविद्यालयों के 46 लाख छात्रों पर पांच गुना तक बढ़ी हुई फीसों का बोझ डालने की तैयारियां हो चुकी हैं। शिक्षा की अपनी जिम्मेदारी से साफ-साफ पीछे हटते हुए सरकार यह कह रही है कि वह उच्च शिक्षा के बढ़ते हुए खर्चों को उठाने की स्थिति में नहीं रह गई है। सरकार के अनुसार, “उच्च शिक्षा व्यवस्था को सामाजिक तौर पर प्रार्थनिक,

विविधतापूर्ण, गुणवत्ता शूलक और सूचना तकनीक उन्मुख बनाने के लिए जितने बड़े पैमाने पर आर्थिक संसाधनों की जरूरत है उसे जुटा पाना सरकार की कूत्रत के बाहर है इसलिए बाहरी स्रोतों से संसाधन जुटाने पर जोर दिया जाना चाहिए।” एक और अजीब बात यह है कि सरकार की जनविरोधी हरकतों के समर्थन में खुशहाल मध्यवर्ग सरकार से भी पहले तर्क देने लगता है। यह तर्क सरकारी दलीलों से भी अधिक प्रतिक्रियादारी होते हैं और इनसे स्वार्थपन और अमानवीयता की बू आती है। मसलन यह अक्सर सुनने को मिलता है कि बेचारी सरकार पैसा कहां से लाये, या फिर यह कहना कि गरीब निकम्मे हैं इसीलिए तो गरीब है, जो

मेंटेनेंस खर्च की समीक्षा के लिए अनादृत विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति प्रो. आनन्दकृष्णन की अध्यक्षता में एक दूसरी कमेटी बनायी। इन दोनों कमेटियों की रिपोर्ट यू.जी.सी. को मिल चुकी हैं और मानव संसाधन विकास मंत्रालय और यू.जी.सी. की एक उपकमेटी इन रिपोर्टों के आधार पर विश्वविद्यालयों की बढ़ी हुई फीसों का नया ढांचा तैयार कर रही है। इसके अनुसार विश्वविद्यालयों और कालेजों को इसी सत्र से अपने कुल बजट का सात प्रतिशत हिस्सा फीसों से जुटाना होगा और साथ ही प्रतिवर्ष एक प्रतिशत की वृद्धिदर से इसे पन्द्रह प्रतिशत तक पहुंचाना होगा। यानी दिल्ली विश्वविद्यालय का सालाना मेंटेनेंस बजट 100 करोड़ रुपये है तो इस फार्मूले के मुताबिक उसे 7 करोड़ रुपया अपने आंतरिक स्रोतों से जुटाना पड़ेगा। यह बोझ सीधे विद्यार्थियों पर पड़ेगा क्योंकि विश्वविद्यालयों के पास ‘आंतरिक स्रोत’ के रूप में उनके अलावा और कोई ऐसा स्रोत नहीं है जो इस बोझ को उठा सके। बी.एच.यू. को सालाना 120 करोड़ रुपये का बजट मिलता है। अगर उसे इसका 7 प्रतिशत तत्काल अपने आंतरिक स्रोतों से जुटाना पड़े तो

यह रकम 8.4 करोड़ रुपये होगी और उसके कुल 13 हजार विद्यार्थियों पर यह रकम प्रति विद्यार्थी लगभग 6400 रुपये पड़ेगी। यह रकम क्रमशः बढ़ते-बढ़ते 13 हजार रुपये तक पहुंच जायेगी

क्योंकि बी.एच.यू. के सामने आने वाले वर्षों में अपने कुल बजट का 15 प्रतिशत यानी 18 करोड़ रुपये जुटाने का लक्ष्य है।

इन कमेटियों के अन्य सुझाव भी बड़े अनर्थकारी हैं। मसलन, रहमान कमेटी के अनुसार एक छात्र पर होने वाले पूरे शैक्षणिक व्यय को शिक्षण शुल्क के रूप में छात्रों से वसूल किया जाना चाहिए। इसके लिए शिक्षण शुल्क को तुरंत तीन गुना बढ़ाया जाना चाहिए। 1992 की पुनर्जीवी कमेटी के अनुसार मानविकी के एक छात्र पर होने वाला वार्षिक व्यय 22000 रुपये और विज्ञान के एक छात्र पर होने वाला व्यय 32000 रुपये है। रहमान कमेटी के अनुसार यह खर्च छात्र को ही उठाना चाहिए। इसके अतिरिक्त परीक्षा शुल्क को कम-से-कम दो से तीन गुना और पंजीकरण शुल्क को पांच से दस गुने तक बढ़ाया जाना चाहिए, छात्रावास शुल्क को 385 रु. से 1000 रुपये मासिक कर देना चाहिए। इसके साथ ही मेस पर दी जा

शिक्षा है सबका अधिकार बंद करो इसका व्यापार

मेहनती होगा वह खुद ही कैम्पस में पहुंच जायेगा। या यह कहना कि अच्छा ही है कि फीसें बढ़ें और गरीब नौजवान छंट जाये, आखिर बेवजह प्रतियोगिता खत्म होगी, यही छात्र कैम्पस में राजनीति करते हैं और अशान्ति फैलाते हैं। लेकिन जब इन उच्च मध्यवर्गीय लोगों की खुद की आमदनी में जरा भी कटौती होती है तो ये कांय-कांय चिल्लताते हैं। तब दिमाग में नहीं आता कि सरकार पैसा कहां से लायेगी।

सरकार के घातक छात्र-विरोधी षड्यंत्रों को अमली जामा पहनाते हुए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू.जी.सी.) ने पिछले साल केन्द्रीय विश्वविद्यालयों के शैक्षणिक ढांचे की समीक्षा के लिए अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलपति महमूरुहमान (जो अपने छात्र-शिक्षक विरोधी कानामों के लिए काफी कुख्याति अर्जित कर चुके हैं) की अध्यक्षता में एक समिति का गठन किया। इसके अलावा दिल्ली विश्वविद्यालय से सम्बद्ध कालेजों के

रही सम्बिंदी को धीरे-धीरे वापस ले लिया जाना चाहिए। यह लिस्ट काफी लम्बी है, जिसमें शिक्षणोंतर गतिविधियों, पुस्तकालय और प्रयोगशाला पर हो रहे पूरे व्यय को छात्रों द्वारा उठाये जाने का सुझाव भी शामिल है। रहमान कमेटी के अनुसार उपरोक्त वृद्धियां न्यूनतम हैं और विश्वविद्यालय और कालेज इससे ज्यादा भी वसूल सकते हैं। कमेटी आगे कहती है कि इस न्यूनतम वृद्धि को सभी विश्वविद्यालयों और कालेजों के लिए कानूनन अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए। सरकार इन अनर्थकारी छात्र-विवरोधी नीतियों पर अमल करने के लिए कितनी प्रतिबद्ध है और कितनी जल्दी में है इसे पिछले दशक में हुई फीस वृद्धियों से समझा जा सकता है। इस दशक के मध्य में प्राथमिक शिक्षा में 20 से 40 गुने तक की फीस वृद्धि हुई, 1997 में मेडिकल और इंजीनियरिंग के शुल्कों में 10 से 80 गुने तक की भारी बढ़ोत्तरी हुई, माध्यमिक शिक्षा, विभिन्न विश्वविद्यालयों, बी.एच.एम.एस., बी.ए.एम.एस. के शुल्कों में भी इसी तरह वृद्धि की जा चुकी है। छात्रों, अभिभावकों और शिक्षकों के व्यापक विवरोध को केंद्र और प्रदेश सरकारों ने बेरहमी से कुचला है।

अब आते हैं इन अनर्थकारी, छात्र-विवरोधी कदमों के पीछे दिये जाने वाले घटिया, कमज़ोर और हास्यास्पद सरकारी तर्कों पर। नई आर्थिक नीतियों के लागू होने के समय से ही एक तर्क दिया जाता रहा है कि उच्च शिक्षा पर किया जाने वाला खर्च व्यर्थ और अनुत्पादक है, इसलिए इस खर्च को खत्म किया जाना चाहिए। भई वाह! जबाब नहीं! क्या तर्क दिया है! उच्च शिक्षा पर खर्च अनुत्पादक है, और संसद विधानसभाओं में निर्थक बहसों, विवरोध की नौटंकी व हांगमे पर प्रति मिनट लाखों रुपये की दर से खर्च होने वाले अरबों रुपये उत्पादक व्यय है? मत्रियों के सैर-सपाटे और चाय-नाश्ते में उड़ जाने वाले सैकड़ों करोड़ क्या उत्पादक व्यय है? हत्यारों-बलात्कारियों- तस्करों-डकैतों को सरकारी सुरक्षा देने में खर्च होने वाले अरबों रुपये क्या उत्पादक व्यय है? क्या यह जनता के साथ बाजार-पुजारी भाजपा सरकार का भद्रा मजाक नहीं है?

दूसरा तर्क भी उतना ही बेहूदा है जितना कि पहला तर्क। इसके अनुसार शिक्षा के बजट को उच्च शिक्षा पर व्यय के बजाय प्राथमिक शिक्षा पर लगाना चाहिए क्योंकि यह “सामाजिक मानवीय और आर्थिक कारणों” से ज्यादा जरूरी है। पुनर्नया समिति ने भी कुछ ऐसी ही दलीलें दी थीं। इस कमेटी ने कहा था कि जो समाज गरीबी और गैरबराबरी से जूझ रहा हो उसमें

विश्वविद्यालयों पर खर्च फिजूलखर्च है और सम्पन्न तबकों को उच्च शिक्षा के खर्च से बचने नहीं दिया जा सकता। पहली बात तो यह कि प्राथमिक शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए उच्च शिक्षा पर दी जाने वाली सम्बिंदियों को खत्म किया जाना जरूरी नहीं है। यह जिम्मेदारी सरकार की है कि वह उच्च शिक्षा और प्राथमिक शिक्षा दोनों को ही आप जनता की पहुंच के भीतर रखे। शिक्षा देने के लिए ऐसी कोई शर्त नहीं हो सकती कि या तो प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध करायें या उच्च शिक्षा। दूसरी बात, एक बार मान भी लें कि उच्च शिक्षा में से खर्च की कटौती प्राथमिक शिक्षा पर लगाने के लिए की जा रही है तो प्राथमिक शिक्षा भी कहां सस्ती हो रही है, वह भी लगातार महंगी होती जा रही है। सच्चाई तो यह है कि उच्च शिक्षा के खर्चों में कटौती प्राथमिक शिक्षा में निवेश बढ़ाने के लिए नहीं बल्कि वित्तीय घाटे को काबू में रखने के लिए की जा रही है। और वित्तीय घाटा शिक्षा के कारण नहीं बल्कि मन्त्रियों-अफसरों की ऐयाशी, भ्रष्टाचार और भयंकर फिजूलखर्चियों के कारण बढ़ता जा रहा है। और सबसे बड़ी बात यह है कि प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा तक पर कुल खर्च ही सरकारी बजट का सिर्फ साढ़े तीन प्रतिशत है। इसी के अंदर सारी कतर-ब्यांत करनी है।

तीसरा तर्क भी उतना ही बेशर्म है जितना कि पहला और दूसरा। इस तर्क में समाजवादी जुमलों की छाँक है। यह तर्क कहता है कि उच्च शिक्षा तक समाज के सम्पन्न तबकों की ही पहुंच है, अतः इसकी शुल्क वृद्धि से समानता बढ़ोगी, न कि गैर-बराबरी। विश्वविद्यालयों-कालेजों में पहुंचने वाले छात्र जितने रुपये कैटीन में और मौज मस्ती में उड़ा देते हैं, उससे भी कम वे महीने की फीस में चुकाते हैं। दूसरी ओर लाखों गरीबों को प्राथमिक शिक्षा भी नसीब नहीं है। इसी से मिलते-जुलते कई तर्क आजकल सरकार, यू.जी.सी. और अपनी आत्मा गिरवी रख चुके शिक्षाविदों द्वारा दिये जा रहे हैं। इस तर्क के सभी आधार खोखले हैं। पहली बात कि उच्च शिक्षा और प्राथमिक शिक्षा दोनों साथ-साथ महंगे हो रहे हैं, इसलिए यह उम्मीद करना बेकार है कि उच्च शिक्षा की सम्बिंदी में कटौती से प्राथमिक शिक्षा सस्ती हो जायेगी। जब प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा को और महंगा बनाया जायेगा तो यह दलील देंगे कि आज देश में इतने लोग भूख से मर रहे हैं इसलिए शिक्षा से ज्यादा जरूरी है अनाज। और जब अनाज महंगा करेंगे तो भगवान जाने कौन

से तर्क देंगे।

रही बात इस दलील कि उच्च शिक्षा तक तो समाज का उच्च वर्ग ही पहुंच पाता है, तो इसके लिए कौन जिम्मेदार है? और इस हालत को सुधारकर उच्च शिक्षा को आप आदमी के लिए भी सुलभ बनाने के बजाय उसे पूरी तरह अमीरों के लिए ही सुरक्षित कर देने का बंदोबस्त किया जा रहा है। क्या खूब समतावादी कदम है। असलियत यह है कि तमाम कठिनाइयों के बावजूद समाज के आप मध्य वर्ग और थोड़े-बहुत मेहनतकश वर्गों से जो छात्र-छात्राएं विश्वविद्यालयों-कालेजों में पहुंच जा रहे थे वह भी सरकार और शिक्षानीति-निर्माताओं को बर्दाशत नहीं हो रहा है। क्योंकि यही छात्र-छात्राएं कैम्पसों में अपने अधिकारों के लिए आवाज उठाते हैं और कैम्पस से बाहर आकर रोजगार के लिए लड़ते हैं। सरकारी दमन और तमाम जनविवरोधी कदमों के खिलाफ ये ही आन्दोलनों में उत्तरते हैं और इन्हीं में से क्रान्ति के सिपाही पैदा होते हैं। इन्हीं को कैम्पसों में घुसने से रोकने के लिए दुरुह प्रवेश परीक्षाओं और महंगी फीसों की कटीली बाड़ लगाई जा रही है।

इसे समझने के लिए यह देखना काफी है कि कितने छात्र बढ़ी हुई फीसों का बोझ उठा सकेंगे। भारतीय विश्वविद्यालय संघ द्वारा दी गई अध्ययन रिपोर्ट के अनुसार 30 प्रतिशत से भी कम छात्र बढ़ी हुई फीसों दे सकते हैं। ये वही 30 प्रतिशत हैं जो सालभर की फीस से ज्यादा पैसे हर महीने कालेज की कैटीन और मोटरसाइकिल-कार के पेट्रोल पर फूँक डालते हैं। यही इस व्यवस्था के लालडे बेटे-बेटियां हैं। इन्हीं की फिजूलखर्चियों का उदाहरण देकर सरकार उच्च शिक्षा को इन्हीं के लिए रिजर्व कर देना चाहती है।

यह कहानी यहीं खत्म नहीं हो जाती है। अगर एक बार यह मान भी लिया जाये कि सारे छात्र बढ़ी फीसें भर देंगे तो भी विश्वविद्यालयों का संकट खत्म नहीं होगा। सरकार यह आश्वासन देने को तैयार नहीं कि 15 प्रतिशत बजट की कटौती के बाद बाकी 85 प्रतिशत सरकार उपलब्ध कराती रहेगी। सरकार इस बात को किनारे कर रही है कि उच्च शिक्षा पर खर्च हर हालत में सरकार की प्राथमिक जिम्मेदारी है।

विश्वविद्यालयों-कालेजों को शुद्ध रूप से पैसा बटोरने की दुकानें में तब्दील कर देने के लिए यूजीसी ने और भी तमाम नायाब तरीके सुझाये हैं। इनमें से एक यह है कि विश्वविद्यालय अपनी संरचनागत सुविधाओं—क्लासरूम, खेल

के मैदान, अतिथि गृह, कम्प्यूटर सेवायें, छात्रावास आदि को भाड़े पर उठायें। कई कालेजों ने तो अपनी इमारतों को शादी-ब्याह के लिए देना शुरू ही कर दिया है, अब वह दिन भी दूर नहीं लगता जब क्लास करने पहुंचे छात्रों को पता चले कि लेक्चर हाल तो किसी कम्पनी के 'प्रेजेंटेशन' के लिए भाड़े पर उठा हुआ है। वैसे शुरूआत हो चुकी है। आई.आई.टी. दिल्ली ने अपने कैम्पस में ही दैत्याकाए कम्प्यूटर कम्पनी आई बी एम को अपनी प्रयोगशाला स्थापित करने के लिए विशाल बिल्डिंग लीज पर दे दी है। आई.आई.टी. की फैकल्टियों में 'इंटेल' और 'माइक्रोसफ्ट' जैसी कम्पनियों के लैब खुल चुके हैं।

दरअसल इन सारी आम छात्र-विरोधी हरकतों के पीछे बाजार-भक्त भाजपा सरकार का एक और छिपा उद्देश्य है। वह है गरीब छात्रों को विश्वविद्यालय तक पहुंचने ही न देना। इसका कारण यह है कि अमीरजादों के लिए तो बेरोजगारी कोई समस्या नहीं है, वे डिग्री के बलबूते रोजगार नहीं पायेंगे तो पैसों से पा जायेंगे या फिर पूँजी के दम पर कोई व्यवसाय कर लेंगे। लेकिन एक गरीब और निम्न मध्यवर्गीय नौजवान यह सब कुछ नहीं कर सकता। ऐसे नौजवान जब डिग्रियां लिये बेरोजगार घूमेंगे, इधर-उधर चप्पतें फटकायेंगे तो उनके मन में एक असंतोष, गुस्सा और व्यवस्था के विरुद्ध रोष तो पनपेगा ही। जब वे समझ जायेंगे कि मौजूदा व्यवस्था में एक गरीब छात्र के लिए इन डिग्रियों का कोई महत्व नहीं, तो विद्रोह की भावना तो पैदा होगी ही। ऐसे नौजवानों की विद्रोह-भावना, गुस्सा और असंतोष इस व्यवस्था की कब्ज खोद सकते हैं। इसीलिए इस बाजार व्यवस्था के कर्ता-धर्ता लोगों के लिए यही भला होगा कि ऐसे नौजवान परिसर तक पहुंच ही न पायें। नतीजतन ऐसी नीतियां लागू की जाएंगी हैं और आगे भी लगातार लागू की जाती रहेंगी।

अपने इन मंसूबों को पूरा करने के लिए इस सरकार में जर्बर्दस्त हड्डबड़ी है। सारे काम बेहद तेजी से किये जा रहे हैं। दिल्ली विश्वविद्यालय के कालेजों में फीस वृद्धि इसी सत्र से लागू कर दी गयी है। कई कालेजों में तो 100 से 140 फीसदी तक बढ़ोत्तरी हुई है, मसलन रामजस कालेज में।

छात्र-युवा अब और कितना इंतजार करेंगे? अब भी अगर हम नहीं जाएंगे और सस्ती व सर्वसुलभ शिक्षा के अपने अधिकार के लिए नहीं लड़ेंगे तो फिर कब जाएंगे! ●

उत्तर प्रदेश सरकार की उच्च शिक्षा सुधार योजना-2000

फीस बढ़ाओ सीटें घटाओ! छात्रों को काठ का उल्लू बनाओ!! चूं-चपड़ करने पर डण्डे चलाओ!!!

सुनील चौधरी

उत्तर प्रदेश में उच्च शिक्षा की खराब गुणवत्ता से चिन्तित सरकार आजकल 'उच्च शिक्षा सुधार योजना-2000' पर मुस्तैदी से अमल कर रही है। इसके तहत विश्वविद्यालयों-कालेजों में भारी शुल्क वृद्धि, 75 प्रतिशत उपस्थिति अनिवार्य करना, सीटों में व्यापक कटौती, समान पाठ्यक्रम लागू करना, छात्रसंघ के ढांचे में फेरबदल और परीक्षा-प्रणाली में सुधार लागू करने की नीति पर वह चल रही है। लेकिन, सरकार के मंत्रियों, सरकारी बुद्धिजीवियों, शिक्षा नौकरशाहों, शासन की वफादारी में डटे हुए कुलपतियों और दिग्भ्रमित बुद्धिजीवियों को छोड़कर शायद ही कोई संजीदा व्यक्ति सोचता हो कि इन उपायों से उच्च शिक्षा की गुणवत्ता पर कोई फर्क पड़ने वाला है। तो आखिर शासन की असली मंशा क्या है?

वैसे, आज आम आदमी बिल्कुल अच्छी तरह यह जान चुका है कि शासन की असली मंशा अधोषित होती है जो नतीजों से जाहिर होती है। और अब नतीजे जाहिर कर चुके हैं कि शिक्षा में "सुधार" के पीछे सरकार का पहला मकसद है कैम्पसों से मेहनतकशों के बेटे-बेटियों को खदेना और डण्डा राज कायम कर छात्रों की सत्ताविरोधी आवाजों का गला घोटना। समग्रता में अर्थव्यवस्था की तर्ज पर शिक्षा का भी बाजारीकरण करना व भूमण्डलीकरण के दौर में शासक वर्ग की नयी जरूरतों के मद्देनजर शिक्षा तंत्र को ढालना।

फीसों में बढ़ोत्तरी-सीटों में कटौती : मुसीबत टालने का हथकण्डा

सामान्य बुद्धि का कोई भी व्यक्ति यह समझ सकता है कि आखिर शुल्क वृद्धि और सीटों में कटौती से उच्च शिक्षा की गुणवत्ता का क्या सम्बन्ध? इसके पीछे शासन की मंशा सिर्फ यह है कि उच्च शिक्षा संस्थानों में सिर्फ उतने ही छात्र दाखिला लें और डिग्री हासिल

करें जितने कल-पुजों की मौजूदा पूँजीवादी तंत्र को ज़रूरत है। "रोजगार विहीन विकास" के मौजूदा दौर में यदि भारी संख्या में उच्च शिक्षा की डिप्रियां हासिल किये नौजवान बेरोजगारी में भटकते रहेंगे तो शासन के लिए मुसीबत पैदा करेंगे। इस बला को टालने के लिए ही शुल्क वृद्धि, सीटों में कटौती और प्रवेश परीक्षाओं की बाड़ खड़ी की गयी है।

शुल्क वृद्धि के पक्ष में दिये जा रहे सभी तर्क सिर्फ फेरबदल हैं। प्रदेश सरकार संसाधनों का रोना रो रही है। उसका कहना है कि विश्वविद्यालयों-कालेजों को स्वायत्त बनाने की नीति के तहत विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यू.जी.सी.) ने अनुदानों में भारी कटौती कर दी है। इसलिए सिर्फ अपने संसाधनों के बूते प्रदेश सरकार उच्च शिक्षा का बोझ बहन करने में असमर्थ है। विश्वविद्यालयों-कालेजों को इस परिस्थिति में अपने संसाधन खुद जुटाने ही होंगे।

यू.जी.सी. किन मजबूरियों में स्वायत्तता का नारा उछाल रही है, इसे फिलहाल छोड़कर प्रदेश सरकार की मजबूरी पर आयें। सच्चाई यह है कि प्रदेश की खस्ताहाल अर्थव्यवस्था में मंत्रियों के जो ठाठ हैं उसकी तुलना सिर्फ अरब देशों के शेखों से की जा सकती है। सत्तारूढ़ होने के बाद से प्रदेश के जम्बो मंत्रिमंडल के मंत्री हर साल करोड़ों रुपये चाय-नाश्ते में उड़ा देते हैं। सरकारी यात्राओं-समारोहों और उनकी सुक्षा पर हर साल करोड़ों रुपये खर्च होते हैं। पिछले दो वर्षों में ही इन मदों में 42 करोड़ रुपये खर्च हो चुके हैं। मंत्रियों-विधायकों के वेतन-भत्ते और अन्य सुविधाएं लगातार बढ़ती जा रही हैं लेकिन शिक्षा पर व्यय का बोझ सरकार नहीं उठा पा रही है। कैसी दिलचस्प मजबूरी है यह!

बात साफ है कि चाहे यू.जी.सी. हो या प्रदेश सरकार—उच्च शिक्षा के राजकीय दायित्वों से पूरी तरह मुंह मोड़कर शिक्षा को पूँजी निवेश का क्षेत्र और शिक्षा को महंगा